पाठ–10
दोहे

मूल पाठ :–

सुखिया सब संसार है, खायै अरू सोवै।

दुख्यिा दास कबीर है, जागै अरू रोवै।

यह संसार भी बहुत विचित्र है। लोग अपनी अज्ञानता में भी मग्न रहते हैं। वे सत्य से परिचित होना ही नहीं चाहते। सारा संसार स्वयं को सुखी महसूस करता है। उसके लिए सुख का अर्थ केवल खाना–पीना और भोग–विलास है। व्यक्ति सांसारिक खुशियों को ही सच्चा सुख मानता है। धन–दौलत को ही वह सबसे बड़ी चीज मानता है। वह इन खुशियों में मग्न रहता है।

यह भोग–विलास, धन–संपत्ति के लिए भागमभाग, लोभ; सब व्यर्थ है। संसार की सभी चीजें यही रह जाएँगी। ये सब की सब नष्ट होनेवाली हैं। इनमें से ऐसा कुछ भी नहीं है, जो स्थाई हो। लेकिन लोग इसे समझने के लिए तैयार नहीं।

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाऊँ।

गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउँ।

भक्ति के लिए अपने अहंकार को छोड़ना आवश्यक है। अहं के साथ भक्ति नहीं हो सकती। भक्ति के लिए सर्वस्व समर्पण की आवश्यकत होती है। भाक्त विनम्र होता है। उसे इसका ज्ञान होता है कि ईश्वर ही एक मात्र सत्य और शक्तिमान है, इसलिए वह अहंकार नहीं करता। कबीर ऐसे ही भक्त थे। वे कहते हैं कि मैं राम का कुत्ता हूँ और मुतिया मेरा नाम है। मेरे गले में राम की रस्सी पड़ी हुई है, अब यह रस्सी जिधर खींचती है, मैं उधर चला जाता हूँ। स्वयं को कुत्ता कहने में एक विशेष भाव छुपा है। कुत्ता अपनी स्वामि भक्ति के लिए ख्यात है। अपने मालिक के समक्ष वह सदा विनयी बना रहता है। उसकी बात नहीं टालता,

उसकी आवाज पर दौड़ा चला आता है। उसके पास होकर अत्यंत खुश रहता है। कबीर भी अपनी पहचान इसी रूप में करते हैं। राम की रस्सी उनके गले में पड़ी हुई है। राम जिधर ले जाएँगे, वे चले जाएँगे, वे अपने राम की बात नहीं टालेंगे। उन्हें अपने ईश्वर में पूरा विश्वास है।

कबीर घास न नींदिये, जो पाऊँ तलि होइ।

उड़ि पड़ै जब आँखि में, खरा दुहेला होइ।

हमें किसी का भी अनादर नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रतिष्ठा होती है। अपने समक्ष किसी को हेय नहीं मानना चाहिए। कबीर इस दोहे में कहते हैं कि पाँव के नीचे पड़े हुए घास की भी निंदा नहीं करनी चाहिए। उसका भी अपना महत्त्व है। उसे तुच्छ नहीं जानना चाहिए। किसी समय जब उसका एक तिनका, एक टुकड़ा आँख में पड़ जाता है तो वह बहुत दुखदायी होता है। हम उससे परेशान हो जाते हैं। इसलिए अपने अहंकारवश किसी को दुत्कारना नहीं चाहिए।

पोथी पढ़ि–पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ।

एके आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होइ।

संसार में पंडित यानी ज्ञानी उसे माना जाता है, जो अधिक से अधिक शास्त्रों और पुस्तकों को पढ़ चुका होता है। कबीर के विचार इससे अलग थे। वे ऐसे व्यक्तियों को पंडित नहीं मानते। बल्कि, वे उन पर व्यंग्य करते हैं। वे कहजे हैं कि न जाने कितने युग बीत गए, शास्त्रों को पढ़–पढ़कर कितने लोग। गुजर गए, पर उनमें से कोई भी वास्तविक पंडित न हुआ। उसे ज्ञान नहीं मिला। ज्ञान तो शास्त्रों की चीज है भी नहीं। पंडित बनना शास्त्रों से संभव नहीं। सच्चा ज्ञान तो 'प्रेम' का पाठ पढ़ने से आता है। जिसने प्रेम का अक्षर पढ़ लिया, जिसने प्रेम की सीख पा ली, सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करने लगा; वही पंडित हो गया। इस एक शब्द प्रेम के सामने सभी शास्त्र व्यर्थ हैं। सभी किताबी ज्ञान व्यर्थ है।

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोइ।

अपना तन सीतल करै, औरन कौ सुख होइ।

हमें ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिसमें अहंकार न हो। जिसमें क्रोध न हो। घमंड से भरकर हमें कुछ नहीं बोलना चाहिए। अभिमान में आकर बोली गई बातें दूसरों को ठेस पहुँचा देती हैं। इससे कुछ भी हासिल नहीं होता। अगर हम अभिमान रहित वाणी बोलेंगे, तो इसका लाभ बोलनेवाले और सुननेवाले दोनों को मिलेगा।

ऊँचे कुल का जनमिया, करनी ऊँच न होइ।

सुबरन कलस सुरा भरा, साधू निंदै सोइ।

ऊँचे कुल में जन्म लेने से ही कोई श्रेष्ठ नहीं हो जाता। हमारे समाज में यह मिथ्या धारणा खूब प्रचलित है कि किसी का जन्म फलाँ घराने में या फलाँ जाति में हुआ है तो वह श्रेष्ठ ही होगा। किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता वंश से नहीं, उसके कर्म से होती है। कबीर कहते हैं कि यदि व्यक्ति के कर्म अच्छे नहीं हैं तो ऊँचे कुल में जन्म लेने से वह आदर का पात्र नहीं हो जाएगा। उसी तरह जैसे कलश यदि सोने का हो और उसमें शराब भरी हो, तो इससे उस कलश को प्रशंसा नहीं मिल जाएगी। सज्जन व्यक्ति उसकी निंदा ही करेंगे और उससे दूर ही रहेंगे। उनकी दृष्टि मे उस सोने के कलश का कोई महत्त्व नहीं होगा।

कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहि।

ऐसैं घटि राम हैं, दुनिया देखै नाहि।

व्यक्ति ईश्वर की तलाश में मंदिर–मस्जिद–गिरजा–गुरूद्वारा जाता है। उसे लगता है कि ईश्वर यहीं है। वह इसे ईश्वर का घर समझता है। लेकिन, कबीर ऐसा नहीं समझते। वे इन्हें व्यर्थ की चीजें मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर इन जगहों पर नहीं है और न ही इनके सहारे उसे पाया जा सकता है। व्यक्ति अपनी अज्ञानतावश ही ऐसी जगहों पर भटकता रहता है।

इस बात को समझाने के लिए कबीर हिरण का उदाहरण देते हैं। वे कहते हैं कि हिरण की नाभि में कस्तूरी का वास होता है लेकिन उसे इस बात का ज्ञान नहीं होता। कस्तूरी को पाने के लिए हिरण जंगल में भटकता फिरता है। अज्ञानी मनुष्य की स्थिति भी ऐसी ही है। वह ईश्वर को अपने भीतर नहीं खोजता। वह तीर्थों और धामों की यात्रा करता रहता है, पर उसे ईश्वर की प्राप्ति उसे नहीं होती। कबीर कहते हैं कि राम यानी ईश्वर प्रत्येक मानव शरीर में बसते हैं। उन्हें अपने भीतर न तलाशकर बाहरी दुनिया में खोजना व्यर्थ है।

कबीर यहु जग कुछ नहीं,षिन षारा षिन मीठ।

काल्हि जु बैठा माड़िया, आज मसांणां दीठ।

इस संसार में ऐसा कुछ भी नहीं है जो शाश्वत हो, जो स्थायी हो, जिसका नाश न हो। जो वस्तु अभी दिखाई पड़ती है, अगले क्षण ही समाप्त हो जाती है। यह संसार नश्वर है। कबीर इस दोहे में यही सीख दे रहे हैं। यह संसार क्षण में खारा मालूम पड़ता है और अगले ही क्षण मीठा। इसमें कभी सुख दिखाई पड़ता है और अगले ही क्षण दुख। इसका रंग हमेशा बदलता रहता है। इसमें कुछ भी टिकनेवाला नहीं है। कल जो मंडप में सजधज कर बैठा था, वह आज श्मशान में दिखाई पड़ता है, जिसके जीवन में कल सुख था, आज दुख दिखाई पड़ता है।

प्रेम न बारी उपजै, प्रेम न हाट बिकाइ।

राजा परजा जेहि रूचै, सीस देइ लै जाइ।

कबीर कहते हैं कि प्रेम किसी खेत में पैदा नहीं होता और न वह किसी बाजार में बिकता है। इसकी खरीद–बिक्री नहीं होती। यदि होती तो कोई राजा, कोई धनवान इसे भी खरीद लेता, अपने पास एकत्र कर लेता। पर, ऐसा नहीं होता। इसे तो वही ले जा सकता है, जिसकी इसमें रूचि हो।

रूचि की पहचान के लिए कबीर एक कसौटी देते हैं। वे कहते हैं कि उसी की रूचि सच्ची है जो अपना सिर दे दे। जो सिर दे सकता है वही अहंकारविहीन करना है। प्रेम की दुनिया में अहंकारी होकर प्रवेश नहीं किया जा सकता। इसमें तो अपना सबकुछ सौंप देना होता है। लालच और घृणा जैसे दुर्गणों के साथ प्रेम नहीं किया जा सकता। अब चाहे राजा हो या प्रजा, जो इस कसौटी पर खरा उतरेगा, वही इसे ले जा सकता है।

जेते तारे रैणि के, तेते बैरी मुझ।

धड़ सूली सिर कंगुरै, तऊ न बिसारौं तुझ।

ईश्वर के प्रति कबीर के समर्पण और प्रेम को यह दोहा बहुत सुंदर तरीके से व्यंजित करता है। कबीर कहते हैं कि रात में आकाश में जितने तारे होते हैं, उतने मेरे शत्रु क्यों न हो जाएँ, मेरा कोई अपना न रहे, सभी मेरे वैरी हो जाएँ! प्रभु, फिर भी मैं तुम्हें भूल नहीं सकता। मेरा धड़ शूली पर क्यों न लटका दिया जाए, मेरा सिर काटकर महल के कंगूरे पर क्यों न टाँग दिया जाए, फिर भी मेरे प्रियतम! मैं तुम्हें बिसार नहीं सकता। स्थिति कितनी भी विकट क्यों न हो, विपरीत क्यों न हो, मैं तुम्हें भूल नहीं सकता।

कबीर अपनी पहचान ईश्वर के एक सच्चे प्रेमी के रूप में कराते हैं। जो प्रेम सच्चा न होगा, वह तनिक विपत्ति आने पर समाप्त हो जाता है। कबीर का प्रेम ऐसा नहीं है। एक नहीं, दो नहीं, रात में आकाश में जितने तारे दिखाई पड़ते हैं, यदि उनके शत्रुओं की संख्या उतनी हो जाए, और वे सभी उनके प्रेम के दुश्मन हो जाएँ, तब भी कबीर अपना प्रेम नहीं छोड़ सकते। यहाँ तक कि उनकी जान भी चली जाए, तो अपने प्रिय ईश्वर के लिए उन्हें वह भी स्वीकार है।

कबीर